International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

वैदिक वाङ्मय में ऋषितत्व : एक विमर्श

डॉ० निधि वेदरत्न

प्रशिक्षित स्नातक संस्कृत शिक्षिका

शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, भारत।

सारांश – वैदिकवाङ्मय में ऋषितत्व एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में वर्णित है जिसका निर्दशन हमें वैदिक वाङ्मय में कतिपय स्थानों पर उपलब्ध होता है किन्तु जिस ऋषि का महत्व वैदिक वाङ्मय में अनेकत्र वर्णित है वस्तुत: वह ऋषितत्व कौन सा है क्या ऋषितत्व वह है जिसमें आमधारणा के अनुसार प्राचीन ऋषि–मुनियों का ग्रहण किया जाता है? अथवा क्या वह ऋषितत्व की परिभाषा से परिभाषित किया जायेगा जो ब्राह्मण निरूक्तादि ग्रन्थों के उपाख्यानों जैसे – विश्वामित्र – नदी संवाद, देवापि –शन्तनु संवाद आदि में वर्णित है ? शास्त्रों में कहीं– कहीं ऋषितत्व से प्राण की महता दर्शायी है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में वर्णित ऋषितत्व सम्बन्धी विविध मान्यताओं का प्रस्तुत शोधपत्र में विचार किया जायेगा।

प्रमुख शब्द –ऋषितत्व, प्राण, शतपथ ब्राह्मण, ऋषि।

वैदिकवाङ्मय में ऋषितत्व एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में वर्णित है जिसका निर्दशन हमें वैदिक वाङ्मय में कतिपय स्थानों पर उपलब्ध होता है किन्तु जिस ऋषि का महत्व वैदिकवाङ्मय में अनेकत्र वर्णित है वस्तुत: वह ऋषितत्व कौन सा है क्या ऋषितत्व वह है जिसमें आमधारण के अनुसार प्राचीन ऋषियो–मुनियों का ग्रहण किया जाता है? अथवा क्या वह ऋषितत्व की परिभाषा से परिभाषित किया जायेगा जो ब्राह्मण निरूक्तादि ग्रन्थों के उपाख्यानों जैसे – विश्वामित्र – नदी संवाद, देवापि –शन्तनु संवाद आदि में वर्णित है ? शास्त्रों में कहीं– कहीं ऋषितत्व से प्राण की महता दर्शायी है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में वर्णित ऋषितत्व सम्बन्धी विविध मान्यताओं का प्रस्तुत शोधपत्र में विचार किया जायेगा।

निरुक्त में वर्णित ऋषितत्व-

महर्षि यास्क के निरुक्त में ऋषि पद का बहुधा उल्लेख प्राप्त होता है। यास्क ने ऋषि की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा –

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः[1]"

साक्षात् कृतः धर्मः यैः ते साक्षात्कृतधर्माणः अर्थात् – जिन्होनें धर्म साक्षात् दर्शन किया वे ऋषि हैं। धर्म क्या है इसको सुस्पष्ट करते हुए स्कन्द स्वामी निरुक्तभाष्य में लिखते है।–

"धर्मस्यातीन्द्रियत्वात् साक्षात्करणस्यासम्भवात् धर्मशब्देनात्र तदर्थं मन्त्रब्राह्मणमुच्यते। तत्साक्षात्कृतो धर्मो यैस्ते साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः[2]॥

यास्क ने इस सन्दर्भ में पूर्वोक्त निरुक्तकारों का मत प्रदर्शित करते हुए औपमन्यव आचार्य को उदधृत किया है।–

"ऋषिर्दशनात्, स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनास्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम् इति विज्ञायते।

अर्थात् दर्शन करने से मन्त्रों का वह ऋषि है। जैसा कि औपमन्यव आचार्य का भी मत है कि जिन्होंने स्तोमों = मन्त्रतत्वों का दर्शन किया है वे ऋषि हैं और जैसा ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा भी जाना जाता है कि जो इन तपस्या करते हुओं को ब्रह्म स्वयम्भू = अपौरुषेय वेद अभ्यानर्षत = प्रकट हुआ वही ऋषि कहलाये तथा ऋषियों का ऋषिपना भी वही है कि उन्होनें अपने तपोबल से बिना किसी के पढाये ही स्वयं ही अपौरुषेय वेद– तत्व को जान लिया, तथा उन्होंने जिस अर्थ में जिस पदार्थ के हेतु मन्त्रतत्व का दर्शन किया वह उस देवता वाला मन्त्र कहलाया, जैसा कि निरुक्तकार निरुक्त के एक अन्य प्रकरण में कहते है।– **यत्कामऋषिः यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तददैवतः स मन्त्रों भवति[3]।**

अर्थात् जिस पदार्थ की कामना से ऋषि जिस देवता की स्तुति करने पर अर्थपतित्व को चाहता हुआ स्तुति करता है उस देवता वाला वह मन्त्र हो जाता है। यास्क के उपरोक्त कथन से एक तथ्य यह सामने आता है कि यास्क ने परवर्ती मन्त्रद्रष्टाओं को भी ऋषिकोटि में परिगणित किया गया है। इस प्रकार यह भी सुनिश्चित हो जाता है कि वेदमन्त्रों में सूक्तों के आरम्भ में जिन मन्त्रद्रष्टाओं वसिष्ठ, विश्वामित्र, भृगु, गृत्समद आदि का नामोल्लेख रहता है वे भी ऋषि हैं। यद्यपि यह सर्वविदित है कि सृष्टि की आदि में वेदों का ज्ञान पुस्तकाकार में न होकर परमात्मा ने ऋषियों की ज्ञानगुहा में प्रदान किया था, और ऋषियों से श्रवण करके यह वेदज्ञान अन्य मानवों ने ग्रहण किया। वेदज्ञान का स्वरूप पुस्तकाकार में बहुत काल पश्चात् अर्थात् कलियुग की दीर्घावधि बीतने के पश्चात् हुआ। सृष्टि की इस दीर्घ काल की अवधि में (1,97,29,49,122) न जाने कितने तपस्वियों ने वेदमन्त्रों का दर्शन किया होगा, किन्तु ऐसा

---

[1] निरु.2.19

[2] स्कन्दमाहेश्वरविरचिता निरुक्तभाष्यटीका भा.1, पृ.113

[3] निरु.7.1

प्रतीत होता है कि जब तक ज्ञान की श्रृंखला अविच्छिन्न रूप से चलती रही, उपलब्ध ऋषियों का विवरण तभी तक का रहा होगा, जिसे प्रथम वेदज्ञान को ताम्रपत्र आदि में अंकित कर् पुस्तकाकार प्रदान करने वाले वेदविदों ने साथ में ऋषियों देवताओं छन्दों स्वरों आदि का भी विवरण लोकहित के लिये सम्पन्न किया होगा, किन्तु निरुक्तकार यास्क तथा ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रभृति विद्वानों की दृष्टि में वे भी ऋषि पदवी से अलङ्कृत हैं जिन्होंने न केवल आदिकाल में अपितु उत्तरकाल में भी मन्त्रों का दर्शन किया, और मन्त्रों के सूक्ष्म स्थूल सभी तत्वों का दर्शन कर लोकमात्र को वेदज्ञान से अवगत कराया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में : ऋषितत्व-

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋषि के सन्दर्भ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है- प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियों की आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया[4]।

वेदों में मन्त्रों एवं सूक्तों के साथ जो ऋषियों के नाम लिखे मिलते हैं उनके सन्दर्भ में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हुए ऋषि दयानन्द व्यक्त करते हैं- वे मन्त्रों के मूल द्रष्टा नहीं हो सकते क्योंकि उनसे पूर्व भी ब्रह्मा आदि ने वेदों का अध्ययन, श्रवण किया था[5]। इसलिये यही मानना उचित है कि- सर्वप्रथम अग्नि आदि ने वेदमन्त्रों का दर्शन किया तथा उन्हें प्रकट किया। बाद में अन्य जिस-जिस धर्मात्मा योगी, महर्षि ने जब मन्त्रार्थ को जानने की इच्छा की, समाधिस्थ हुए तथा परमात्मा की कृपा से उन्हें मन्त्रार्थ का प्रकाश हुआ तब-तब वे उस मन्त्र के ऋषि कहलाये[6]। वेदभाष्य करते हुए मन्त्र में प्रयुक्त ऋषि शब्द की निरुक्ति करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं- **मन्त्रार्थद्रष्टृभिरध्याकैस्तर्कै: कारणस्थै: प्राणैर्वा**[7] इस प्रकार विदित होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में 'ऋषि' पद का अर्थ - मन्त्रार्थद्रष्टा, अध्यापक (गुरु, ज्ञानप्रदाता), तर्क, कारण में स्थित मूलतत्व तथा प्राणतत्व हो सकता है।

श्री अरविन्द के मत में- ऋषितत्व-

वेदरहस्य में श्री अरविन्द ऋषि के प्रसङ्ग में लिखते हैं- अङ्गिरस्, कुत्स, कण्व इत्यादि शब्द जो आपातत: ऋषियों के व्यक्तिवाचक नाम हैं। किन्हीं आध्यात्मिक अनुभवों तथा विजयों के प्रतीक अथवा आदर्श हैं। वे दिव्यता प्राप्त करके देवों की कोटि में आ गये थे, अत: ये ऋषि एक साथ दैवी तथा मानवी दोनों प्रकार के द्रष्टा हैं[8]।

---

[4] सत्यार्थ प्रकाश

[5] ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

[6] सत्यार्थ प्रकाश

[7] ऋ.1.1.2

[8] वेदरहस्य प्रथम खण्ड

श्री अरविन्द के अनुसार- यह स्पष्ट तथ्य दृष्टिगोचर हो रहा है कि उन्हें भी वेदज्ञान को साक्षात्कार करने वाले, दिव्यता से परिपूर्ण ऋषियों का ही कथन करना अभीष्ट है।

विविध शास्त्रों की दृष्टि में : ऋषितत्व- संस्कृत वाङ्मय में भी विविध स्थानों पर ऋषितत्व का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है जहाँ अनेकत्र स्थानों में ऋषि की अवधारणा में सादृश्य अधिकता से दृष्टिगोचर होता है। वैदिक वाङ्मय में वर्णित ऋषितत्व निम्नलिखित उद्धरणों से अभिव्यक्त किया जा रहा है-

ऋक्सर्वानुक्रमणी में ऋषितत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया- **यस्य वाक्यं स ऋषि:** अर्थात् जिन्होंने सर्वप्रथम मन्त्रों को कहा= प्रकाशित किया वे ऋषि है।

तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार- अजान् ह वै पृश्नीं तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वानर्षत् तद् ऋषयोऽभवन्[9]। अर्थात् जिन्होंने अपौरुषेय वेदज्ञान को प्राप्त किया वे ऋषि हैं इसी भाव को शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार वर्णित किया गया है कि-

श्रमेण तपसा अरिषन्त तस्मात् ऋषय:[10] यहाँ रिष् धातु तपस्या करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई अत: उपरोक्त उद्धरण का अर्थ हुआ- तपस्या के द्वारा श्रम से जिन ऋषियों ने मन्त्रों का दर्शन किया वे ऋषि हैं।

बृहद्देवता में ऋषि की अवधारणा को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त किया गया- **संवादेष्वाह वाक्यं य: स तु तस्मिन् भवेद् ऋषि:**[11]। अर्थात् संवादों के मध्य जो वाक्य= वचन को कहता है वह उन संवादों में ऋषि कहलाता है। बृहद्देवता के अनुसार- ऋषि केवल संवादों में मुख्य भूमिका निर्वाह करता है किन्तु जैमिनीय ब्राह्मण में ऋषि वह है जिन्होंने लोकहित मन्त्रों का प्रकाश किया जैसा कि कहा गया है- **ऋषिर्ह स्म मन्त्रकृद् ब्राह्मण आजायते**[12]**।** मैत्रायणी संहिता के परिप्रेक्ष्य में ऋषि कवि है अर्थात् ऋषि क्रान्तदर्शी हैं जो भूत, भविष्यत् वर्त्तमान का एक काल में दर्शन कर सके वही कवि ऋषि है। मैत्रायणी संहिता के शब्दों में- **ऋषय: कवय:**[13]

उपरिलिखित समस्त ऋषिसन्दर्भों को कारिका में समेटते हुए वाक्यपदीयकार लिखते हैं-

आविर्भूतप्रकाशानाम् अनुपप्लुतचेतसाम्।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते।

---

[9] तैति. आर.2.9

[10] शत.ब्रा.6.1.1.1

[11] बृहद्देवता 2.28

[12] जैमि.ब्रा.2.266

[13] मैत्रायणी सं.4.1.2

अतीन्द्रियमसंवेद्यं पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।

ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते[14]॥

ऋषि वे हैं जिनके चित्त रजोगुण एवं तमोगुण से आविर्भूत नहीं हुए है। जिन्हें अतीत और अनागत प्रत्यक्ष के समान दिखाई देता है तथा जो पदार्थ प्रत्यक्षमूलक अनुमान के द्वारा भी ज्ञात नहीं होते उन अतीन्द्रिय असंवेद्य पदार्थों (ईश्वर, जीव आदि) को अपनी आर्ष दृष्टि से ऋषिजन देख लेते हैं और आर्ष दृष्टि से देखे गये पदार्थों को ही ऋषिजन मन्त्र के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, जैसा कि वाचस्पत्यम् में भी कहा–

येन यद् ऋषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै।

मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तम् ऋषिभावः स उच्यते[15]॥

अर्थात् जिस ऋषि ने जिस मन्त्र का दर्शन किया और मन्त्र का दर्शन करके जो सिद्धि प्राप्त की वह मन्त्र उसी ऋषि के द्वारा प्रोक्त माना जाता है तथा उस मन्त्र का द्रष्टा भी वही ऋषि कहा जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त समस्त विवरण के अनुसार ऐसा कहा जा सकता है कि अधिकांशतः ऋषि शब्द से मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का ही ग्रहण किया गया है। अध्यात्मपरक अर्थों में दयानन्द अरविन्द प्रभृति विद्वानों ने ऋषि शब्द से किसी दिव्य, विलक्षण पदार्थ की ओर भी संकेत किया है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि– सर्वानुक्रमणी के निम्नाङ्कित श्लोक में ऋषि शब्द से उस दिव्य पदार्थ की ओर संकेत किया है। श्लोक इस प्रकार है–

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।

योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः[16]॥

अर्थात् जो ऋषि, छन्द, और देवता के विनियोग को सम्बन्ध को जाने बिना अध्यापन करे वह पापी बन जाता है।

ऋषि शब्द का दयानन्द ने एक अर्थ प्राण भी किया है। अरविन्द ने जिसे दिव्य शक्ति कहा उस प्राण के सन्दर्भ में अन्य विद्वानों के भी मत द्रष्टव्य है– पं. गिरिधारी शर्मा चतुर्वेदी ने ऋषितत्व को समझाते हुए अपनी पुस्तक वैदिक विज्ञान में लिखा– ‘ वैदिक तत्व मुख्य रूप से पाँच भागों में विभक्त हैं। ये पाँचों भाग ऋषि पितर देव असुर और गन्धर्व इन नामों से वेद में प्रसिद्ध हैं। इन पाँचों की समष्टि ही सूक्ष्म जगत् कहलाता है। ऋषि और देव प्राणविशेष है। . . . उपनिषद् में इस सन्दर्भ में प्रकाश डालते हुए

---

[14] वाक्य. ब्रह्म.36,38

[15] वाचस्पत्यम्

[16] सर्वानुक्रमणी 1.1

कहा गया- प्राण ही सबके आदि में था और वही क्रमसः स्थूल जगत् का कारण बना। इस प्राण की भी पाँच अवस्थाएं अथवा पाँच भेद हैं जिन्हें वेद में क्रमशः पितर, ऋषि, देव, असुर और गन्धर्व कहा गया है। इन पाँचों में भी ऋषिप्राण ही मुख्य है जैसा कि शतपथ में कहा है-

असद् वा इदमग्र आसीत् तदाहुः किं तद् असदासीत् ऋषयो वा व तेऽग्रेऽसदासीत्। तदाहुः के ते ऋषय इति प्राणा वा ऋषयः[17]। अर्थात् सबसे पहले सृष्टि की आदि में असत् था। जिज्ञासा हुई, वह असत् क्या था? उत्तर मिला- ऋषि ही असत् थे। पुनः आकांक्षा हुई कि ऋषितत्व क्या है? समाधान मिला- प्राण ही ऋषि है। यहां असत् पद से प्राणरूप ऋषि का अभिधान किया गया है क्योंकि प्राण ही सत्ता रूप में सबमें अनुप्रविष्ट हुए हैं तथा दूसरा कोई पदाथ तत्व सत्तारूप से प्रविष्ट नहीं होता अतः प्राण असत् है।. . .

शतपथ ब्राह्मण में - **प्राणा वा ऋषयः** कहकर ऋषियों के सात विभाग किये। जिनमें ऋषि प्राण ही प्रथम हैं और अन्य देवप्राण आदि ऋषिप्राण से उत्पन्न होते हैं । ऐसा शतपथ ब्राह्मण में संकेत मात्र मिलता है, इसे मनुस्मृति में स्पष्ट शब्दों में दर्शाते हुए कहा गया-

ऋषिभ्यो पितरः जाताः पितृभ्यो देवदानवाः।

देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः[18]॥

अर्थात् ऋषिप्राण से पितर प्राणों की उत्पत्ति हुई, पितर प्राण से देव और दानव ये दो प्रकार के प्राणों का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें देव नामक प्राण विशेष से यह सारा जगत् जड़-जङ्गम क्रमशः निर्मित हुआ . . . । देव प्राणों से प्रकाश का भाग सम्पन्न होता है और असुर प्राणों से अन्धकार का . . . । इनसे गन्धर्व प्राण की उत्पत्ति होती है उनमें सात ऋषि आठ पितर . . . आदि।

दूसरों से असम्पृक्त होने के कारण ये ऋषिप्राण शुद्ध तथा दूसरों से पहले उत्पन्न होने वाले हैं। ये प्राण अध्यात्म अधिदैव तथा अधिभूत के नाम से तीन प्रकार के होते हैं तथा प्रत्येक में अपने आपको सात-सात संख्या में विभक्त कर विराजमान है। आध्यात्मिक ऋषियों का विवरण शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार मिलता है- **प्राणो वै वसिष्ठः ऋषिः यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः, अथो यद् विस्तृततमो वसति तेनो एव वसिष्ठः**[19]॥

अर्थात् प्राण ही वसिष्ठ ऋषि हैं क्योंकि वही सबमें श्रेष्ठ है और बहुत व्यापक होकर रहता है, इसलिये भी वसिष्ठ है}

---

[17] शत.ब्रा.6.1.1.1

[18] मनु. 3.201

[19] शत.ब्रा. 8.1.1.6

मन एवं चक्षु आदि इन्द्रियों के वर्णन प्रसङ्ग में भी शतपथ ब्राह्मण में ऋषि लिखते हैं- मनो वै भरद्वाज ऋषिः। अन्नं वाजः यो वै मनोबिभर्ति सोऽन्नं वाजं भरति, **तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः चक्षुर्वै जमदग्निऋषिः यदनेन जगत्पश्यति अथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निऋृषिः**[20]**॥**

अर्थात् मन ही भरद्वाज ऋषि है अन्न का नाम वाज है और अन्न से जो परिपुष्ट होता है वही भरद्वाज कहलाता है। चक्षु ही जमदग्नि ऋृषि है क्योंकि चक्षु से ही जगत् को देखते हैं और जो देखा जाता है उसी का मनन भी होता है इसलिये उसे जमदग्नि कहते हैं। इस प्रकार गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने शतपथ को उद्धृत करते हुए आध्यात्मिक ऋषियों में इन्द्रियों की महत्ता दिग्दर्शित की है।

अधिदेवपरक अर्थ करते हुए अन्तरिक्ष में दृश्यमान सप्तर्षि मण्डल को ऋषि संज्ञा से अभिहित करते हुए चतुर्वेदी जी ने निम्नलिखित नामों का उल्लेख किया है- मरीचि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु। . . . इनके अतिरिक्त आकाश के मध्य विषुवत् वृत्त के समीप अथित अगस्त्य, मत्स्य और वसिष्ठ नामक तारे भी ऋषि कहलाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र पान करने की कथा विख्यात है जिसका आशय यह है कि- वर्षा ऋतु की समाप्ति बाद यह अगस्त्य तारा आकाश में स्पष्ट दीखने लगता है और उसके उदित होते ही अन्तरिक्ष स्वच्छ हो जाता है और वर्षा बन्द हो जाती है। निघण्टु में आकाश को भी समुद्र स्वीकारा गया है अतः उसी समुद्र का शोषण इस अगस्त्य तारे द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट सिद्ध है कि मरीचि अत्रि आदि प्राणविशेष हैं जिनको ऋषिप्राण कहा जाता है अतः आधिभौतिक पक्ष में तत्तद् ऋषि नाम से प्रसिद्ध इतिहासपुरुष उस-उस प्राणविशेष को प्रकट करने वाले हैं ऐसा जानना चाहिये, यथा- अत्रि ऋषि द्वारा प्रकटित प्राणतत्व मरीचि नाम से कहलाया। इस प्रकार जिस-जिस इषि ने जिस-2 प्राण तत्व को प्रकट किया वह-2 प्राणतत्व उस-2 ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुआ[21]। उपरोक्त विवरण से ऋषि शब्द का आध्यात्म पक्ष स्पष्ट होता है।

आधुनिक कुछ विद्वानों ने ऋषितत्व को स्पष्ट करने हेतु विभिन्न शक्तियों का आश्रयण किया है। मधुसूदन ओझा नामक विद्वान् ने ऋषि तत्व को समझने कि लिये इसे चार भागों में विभक्त किया है- 1. असल्लक्षणा, 2. रोचनालक्षणा, 3. द्रष्टृलक्षणा, 4. वक्तृलक्षणा। इनका व्याख्यान इस प्रकार है-

1. असल्लक्षणा- असल्लक्षणा में तीन कोशों का अन्तर्भाव होता है- प्राणमय, मनोमय, वाङ्मय, क्योंकि असल्लक्षणा में आत्मा की प्रधानता है जैसा कि शास्त्रों में प्रकाश डाला गया है- स वा एश आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः- इति। अर्थात् वह आत्मा वाङ्मय, प्राणमय और मनोमय रूपों वाला है, अथवा इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि ये तीनों आत्मा के ही विवर्त्त हैं, जिसमें

[20] शत.ब्रा.8.1.2.3

[21] वैदिक विज्ञान वैदिक ऋषि और देव

मन सत् और असत् (सदसत्) दोनों रूपों वाला है। प्राण केवल असत् है। यह वाक् केवल सत् है। इस प्रकार सदसत्, सत्, असत् इन तीनों को भी आत्मा का विवर्त्त समझना चाहिए क्योंकि रूप, रस गन्ध, स्पर्स सब्द आदि पदार्थोंसे रहित, जगह को न घेरने वाला, सभी पदार्थों का मूलभूत तत्व प्राण ही है, वह प्राण असत् नामा ऋषि है अत: उस प्राणतत्व के महत्व को समझाने वाली यह प्रथम असल्लक्षणा नामक शक्ति हुई।

2.रोचनालक्षणा- उपरोक्त असल्लक्षणा के वर्णन में जो असल्लक्षण वाले प्राणतत्व का निर्देश किया है वे दो प्रकार के हैं- 1. सत्य 2. ऋत। सत्य प्राण वे हैं जो शरीर के साथ विद्यमान है अर्थात् जिनकी सत्ता प्रतिभासित हो रही है वे सत्य हैं। जो प्राण इस व्योम में समान रूप से व्याप्त हो रहे हैं वे ऋत हैं। इन सत्य और ऋत की नक्षत्रों में प्रवृत्ति को रोचना लक्षणा के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है- **तत्तन्नक्षत्रेषु प्रतिष्ठिता:, अतएव सायतना: सशरीरा:प्राणा: सत्यानि। तत्तन्नक्षत्रेभ्यस्ते ते प्राणा विनि:सृता भवन्ति। तेनैतेन नाक्षत्रिकप्राणप्रवर्ग्यभोगेनैवास्माकं प्राणानां पुष्टिरिति विज्ञानतोऽवगम्यते। ते चैते नाक्षत्रिका ऋषिप्राणा: लोमगर्त्तेभ्य: प्रविशन्ति[22]। एतदेवाभिप्रेत्योक्तम्- वाजसनेयके- एभ्यो लोमगर्त्तेभ्य: ऊर्ध्वानि ज्योतींष्यायन्। तद्यानि तानि ज्योतींषि- एतानि तानि नक्षत्राणि। यावन्त्येतानि नक्षत्राणि तावन्तो लोमगर्त्ता:। यावन्तो लोमगर्त्तास्तावन्त: सहस्रसंवत्सरस्य मुहूर्त्ता:[23]। य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता न:। स आशिषा द्रविणमिच्छमान: प्रथमच्छतवराँ आ विवेश[24]॥**

पूर्वोक्त चर्चा में सप्तर्षि आदि तारों को ऋषि शब्द से व्यक्त किया गया था उसी कथन को परिपुष्ट करते हुए रोचना नामक लक्षणा में नक्षत्र- ताराओं का ऋषित्व स्थापित किया गया है।

1. द्रष्टृलक्षणा- द्रष्टृलक्षणा के अन्तर्गत सामान्यत: ऋषितत्व से वे सभी कथित होते हैं जिन्होंने ब्रह्म द्वारा प्रदत्त वेदज्ञान को अपनी ज्ञानगुहा में धारण किया। आचार्य सायण ने इस विषय में तैत्तिरीय संहिता की व्याख्या क्रम में लिखा-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एवं विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदसा[25]॥

अर्थात् जिसको प्रत्यक्ष अनुमिति आदि के द्वारा न जाना जा सके उसे जो दिव्य दृष्टि से अपनी आर्ष दृष्टि से देखते हैं वे ऋषि हैं। वेद नाम उस ग्रन्थ नाम का नहीं अपितु ज्ञान का है और ब्रह्म भी ज्ञानप्रकाशरूप है। उसे उस ज्ञान की दृष्टि से जिन्होने देखा=दर्शन

---

[22] विज्ञानोन्मेष, ले. प्रद्युम्न शर्मा

[23] शत. ब्रा. 10.4.4.2

[24] ऋ.सं.10.81.1

[25] तैत्तिरीय संहिता भाष्यम्

किया वे ही द्रष्टृलक्षणा के द्वारा कहे जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इस सन्दर्भ यह उद्धरण द्रष्टव्य है– "तद्वा ऋषय: प्रतिबुबुधिरे य उ तर्हि ऋषय आसु:'[26]। अर्थात् उन तपस्वियों के अन्त:करण में व्व्दविज्ञान स्वयं ही आविर्भूत हुआ, वे ही तपस्वी ऋषि कहलाये।

1. **वक्तृलक्षणा-** इसके अन्तर्गत उन्हें भी ऋषि स्वीकारा गया है जिन्होंने मन्त्रों को सुनकर आगे प्रवचन किया॥

उपसंहार- ऋषि शब्द के व्यापक विचारान्वेषण के पश्चात् अन्त में वेद के शब्दों में ऋषि शब्द को पूर्णता प्रदान करते हुए कहा सकता है– ऋषिर्सैव मनुर्हित: ऋषि वही है जो मनुष्य के हित–सम्पादन में लगा रहता हो अत: वे सभी पदार्थ ऋषि हैं जो मनुष्य का सर्वविध कल्याण करते हैं वे मनुष्य भी ऋषि हैं जो मनुष्यों के भूत, भविष्यत् का विचार कर उनका कल्याण करते हैं।

[26] शत.ब्रा.2.2.1.14